JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

किसान संघर्ष और हिंदी साहित्य: प्रेमचंद से 21वीं सदी तक रचनात्मक विकास

Monu Swami, Dr. Ramkrishan Sharma
Research Scholar
Jayoti Vidyapeeth Women's University Jaipur.

हिंदी साहित्य में किसान संघर्ष का चित्रण प्रेमचंद से लेकर 21वीं सदी तक एक रचनात्मक विकास रहा है। प्रेमचंद ने "गोदान" जैसे उपन्यासों के माध्यम से किसानों की दुर्दशा और शोषण को उजागर किया, वहीं 21वीं सदी के साहित्य में किसानों की समस्याओं को और अधिक व्यापक रूप से दर्शाया गया है, जिसमें आत्महत्याओं और कृषि संकट जैसे गंभीर मुद्दे शामिल हैं। यह शोध पत्र हिंदी साहित्य में किसान संघर्ष और रचनात्मक विकास पर केंद्रित है, जिसमें प्रेमचंद से लेकर 21वीं सदी तक के रचनाकारों के कार्यों का विश्लेषण किया गया है। यह पत्र किसान जीवन की बदलती परिस्थितियों और साहित्य पर उनके प्रभाव की पड़ताल करता है।

किसान संघर्ष और हिंदी साहित्य का गहरा संबंध है। हिंदी साहित्य में किसानों की समस्याओं, संघर्षों और उनकी जीवनशैली को विभिन्न विधाओं जैसे उपन्यास, कहानी, कविता आदि में चित्रित किया गया है। प्रेमचंद जैसे लेखकों ने विशेष रूप से किसान जीवन को अपने लेखन का केंद्र बनाया और किसानों की दुर्दशा को उजागर किया. धरती और किसान का अटूट रिश्ता है, वह अपनी जमीन से सर्वाधिक लगाव रखता वही उसका सब कुछ है। दरअसल कृषक समाजों के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि उनकी जीवन शैली है। किसान के लिए खेती कोई व्यापार-व्यवसाय भी नहीं है, बल्कि यह तो उसकी रोजमर्रा की जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा है, किसान अपने खेतों से सर्वाधिक लगाव रखता है और वह किसी भी कीमत पर अपने खेत छोड़ने को तैयार नहीं होता। लाख प्रलोभन भी उसे नहीं डिगा पाते, किसान के लिए उसका खेत ही सब कुछ होता है, सब कुछ खोकर भी वह ''किसान'' बना रहना चाहता है। वह दो बीघे की जायदाद का मालिक कहलाना ज्यादा पसंद करता है और जब-जब उसकी इस

धरोहर को छीनने की कोशिश की गई है, तब-तब उसने उग्र रुप धारण किया है और आंदोलन के रास्ते पर उठ खड़ा हुआ है। प्रमाण स्वरुप अंगे्रजों के विरुद्ध हुए किसानों के आंदोलन देखे जा सकते है। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं किसान जीवन की विधिक छवियों का प्रमाणिक अंकन समय-समय पर हुआ है। प्रेमचंद ने अपने रचनाओं माध्यम से किसान को साहित्य में एक मुकम्मल जगह प्रदान की। उन्होने किसान जीवन को बहुत करीब से देखा और फिर उसको अपने लेखन का केन्द्र बनाया। प्रेमचंद के प्श्चात् ग्रामीण जीवन पर बहुत लेखकों ने उपन्यास और कहानियां लिखी जो उल्लेखनीय रही है। साथ ही हिन्दी कविता में भी किसान जीवन की विविध छवियां अंकित है। लेकिन इधर के वर्षो में परिस्थितियां बदली है। 21वीं सदी की विभिन्न चुनौतियों ने किसानों के समक्ष बहुत सारे सवाल खड़े कर दिए। वैश्वीकरण और भू-मण्डलीयकरण के प्रभाव ने अन्नदाताओं को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया। बढ़ते पूंजीवादी प्रभाव ने किसान जीवन को हाशिए पर धकेल दिया है। लेखन की दुनिया में भी आज किसान धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है। ऐसे भीषण समय में प्रेमचंद आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और समकालीन है क्योंकि न किसानों और जमीन की समस्या हल हुई है न भूमिहीन मजदूरों को श्रम शोषण से मुक्ति मिली है, बल्कि उसमें स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों और अल्प संख्यकों के नये आयाम और जुड़ गए। प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टि ही उनकी परम्परा है। जिसे हम आज जल, जमीन और जंगल के असमान वितरण के संघर्ष के रुप में देख रहे है।

किसान संघर्ष का हिंदी साहित्य में चित्रण

प्रेमचंद को हिंदी साहित्य में किसान जीवन का महान चितेरे माना जाता है। उनके उपन्यासों (जैसे गोदान) और कहानियों में किसानों की गरीबी, शोषण, और संघर्ष को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद के अलावा, कई अन्य लेखकों ने भी किसान जीवन को अपने साहित्य में स्थान दिया है। फणीश्वर नाथ रेणु ने अपने उपन्यास मैला आंचल में ग्रामीण जीवन और किसानों की समस्याओं को चित्रित किया है। हिंदी साहित्य में किसानों की भूमि पर अधिकार, फसल के उचित मूल्य, सिंचाई, ऋण, और शोषण जैसी समस्याओं को उजागर किया गया है। किसान साहित्य न केवल किसानों की समस्याओं को दर्शाता है, बल्कि ग्रामीण जीवन, सामाजिक संरचना, और सांस्कृतिक मूल्यों को भी दर्शाता है। हिंदी साहित्य में किसानों के संघर्ष को भी चित्रित किया गया है, चाहे वह आर्थिक संघर्ष हो या सामाजिक संघर्ष। यह संघर्ष उनके अस्तित्व, सम्मान, और न्याय के लिए होता है।

प्रेमचंद किसान आंदोलन साहित्य के लिए प्रेरणा का स्रोत रहे हैं। कई लेखकों ने किसान आंदोलनों को अपने लेखन में शामिल किया है, जिससे साहित्य को एक नया आयाम मिला है। साहित्य ने किसानों की समस्याओं और संघर्षों के बारे में जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने समाज को किसानों की स्थिति से अवगत कराया है। साहित्य ने किसानों के संघर्षों को आवाज देकर सामाजिक परिवर्तन में भी योगदान दिया है।

हिंदी साहित्य ने किसान संघर्ष को एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में चित्रित किया है। प्रेमचंद जैसे लेखकों ने किसानों की समस्याओं, संघर्षों, और जीवनशैली को गहराई से उजागर किया है। किसान साहित्य ने न केवल किसानों की स्थिति को दर्शाया है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन में भी योगदान दिया है।

प्रेमचंद और किसान:

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में भारतीय किसान के जीवन को गहराई से चित्रित किया है। उन्होंने न केवल किसानों के आर्थिक शोषण को उजागर किया, बल्कि उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्थितियों का भी चित्रण किया। प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास को किसान जीवन का महाकाव्य माना जाता है। इसमें उन्होंने एक ऐसे किसान होरी के माध्यम से भारतीय किसान की त्रासदी और संघर्ष को दर्शाया है, जो जमींदारों और साहूकारों के शोषण का शिकार होता है। प्रेमचंद ने किसानों को एक जीवंत पात्र के रूप में प्रस्तुत किया, जो अपनी इज्जत बचाने के लिए संघर्ष करता है। प्रेमचंद ने किसानों की समस्याओं को आवाज दी और उन्हें शोषकों के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। प्रेमचंद के बाद भी कई लेखकों ने किसान जीवन को अपने लेखन का विषय बनाया। इन लेखकों में नागार्जुन, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवमूर्ति जैसे नाम शामिल हैं।इन लेखकों ने 20वीं सदी के उत्तरार्ध और 21वीं सदी में किसानों के जीवन में आए बदलावों को अपने लेखन में चित्रित किया।इनमें से कुछ लेखकों ने नव-उदारवाद और भूमंडलीकरण के दौर में किसानों के सामने आने वाली चुनौतियों को भी उजागर किया।

बीसवीं सदी के दूसरे तीसरे दशक में देश की औपनिवेशिक व्यवस्था में किसानों की जो दशा थी, आज़ादी के उनहत्तर साल बाद क्या हालत है, यह हमें रोज अखबार और टीवी से पता चल रहा है। मीडिया पर आज के दौर में पूँजीपति या औद्योगिक घरानों के भारी नियंत्रण के बाद भी पिछले पंद्रह

सालों में देश के तीन लाख से भी अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं और आज भी उन्हे कोई राहत नहीं है, भले ही कोई हज़ार करोड़ मुआवजे बाँटे गए हैं। किसानों की आत्महत्या या देश का कृषि संकट देश की भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आज भी कम होने की बजाय निरंतर बढ़ रहा है। इसका प्रभाव साहित्य के क्षेत्र पर भी पड़ा। हिन्दी साहित्य के उच्चकोटि के रचनाकार प्रेमचंद समाज के इस यथार्थ से अत्यधिक विचलित हुए, जिसका प्रभाव उनकी रचनाओं पर भी पडा। किसान जीवन की जितनी गहरी, प्रामाणिक और वास्तविक समझ प्रेमचंद के यहाँ जैसी थी, वैसी समझ हमें किसी और कथाकार के पास दिखाई नहीं पड़ती। किसानों के जीवन की त्रासदी को उन्होनें जैसे खुद तिल-तिल कर महसूस किया था, वैसा ही अपने कथा साहित्य में उतारा।

भारत की पहचान एक कृषि प्रधान राष्ट्र के रूप में रही है। स्वाधीनता पूर्व यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी, आज यह आँकड़ा कम तो हो गया है, परन्तु अभी भी हमारे देश में गाँव बहुतायत में हैं। जहाँ स्वाधीनता के 77 वर्षों बाद भी मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। ग्रामीण समाज का मुख्य व्यवसाय कृषि व कृषि आधारित है, परन्तु दुर्भाग्य आज भी हमारे किसानों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है। आज भी वे ऋण के बोझ तले दबा हुआ आत्महत्या करने को विवश है। आज प्रत्येक वस्तु की कीमत आसमान पर है, परन्तु किसान इन बढ़ती कीमतों का सांझीदार कभी नहीं बन पाता, बिचैलिये और व्यापारी उसकी मेहनत का भरपूर फायदा उठाते हैं और किसान उसी गरीबी और बदहाली में अपने दिन काटता है।

प्रेमचन्द ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने भारतीय किसान की दयनीय स्थिति के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति ही नहीं बेचैनी और चिन्ता भी व्यक्त की। उनका स्पष्ट मत था कि किसान की आर्थिक मुक्ति के बिना पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे किसानों के महत्त्व व उनकी दयनीय दशा के सम्बन्ध में लिखते हैं, "भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वह हैं, जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मुहताज हैं, जैसे गाँव के बढ़ई, लुहार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है, वह इन्हीं किसानों और मजदूरों की मेहनत का सदका है। हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज, हमारी अदालतें और कचहरिया सब उन्हीं की कमायी के बल पर चलती हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं, भरपेट अन्त को तरसते हैं, जाड़े-पाले में ठिठुरते हैं, और मक्खियों की तरह मरते हैं।"

वस्तुतः भारतीय किसान और उसकी समस्याओं को साहित्यिक अभिव्यक्ति देने का प्रथम प्रयास प्रेमचन्द ने ही किया। उनका 'प्रेमाश्रम' हिन्दी का पहला उपन्यास है, जिसमें किसानों के संघर्ष व समस्याओं की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है। इसके पश्चात् 'कर्मभूमि' 'गोदान' जैसे उपन्यासों और 'कफन', 'पूस की रात', 'सवा सेर गेहूँ' तथा 'मुक्ति मार्ग' जैसी कहानियाँ विशुद्ध किसानी जीवन पर केन्द्रित हैं। इसके अतिरिक्त भी किसानों के शोषण, बदहाली और संघर्ष के प्रामाणिक व यथार्थ चित्र उनके साहित्य में यत्र-यत्र देखे जा सकते हैं।

प्रेमचन्द मानो भारतीय किसान के जीवन का कोना-कोना झाँक आये हैं। उन्होंने बड़ी शिद्दत से यह अनुभव किया कि भारतीय किसान घोर परिश्रमी है, किन्तु अपने कठिन परिश्रम का फल उसे नहीं मिल पाता है, फलस्वरूप वह गरीबी और बदहाली में सम्पूर्ण जीवन बिता देता है। इसके अतिरिक्त वह अशिक्षित व अज्ञनी है, इस कारण वह निरन्तर शोषण के चक्र में पिसता है। प्रेमचन्द की मुख्य चिन्ता "किसान का शोषण है। उन्होंने किसान के शोषकों की एक कड़ी के रूप में अंग्रेजी साम्राज्यवाद को देखा। उन्होंने यह भी दिखाया है कि किसान के शोषण का कारण ब्रिटिश साम्राज्यवादी ही हैं, उन्हीं के कारण जमींदार, सूदखोर तथा इनकी नौकरशाही शोषण कर रही है।" ये शोषक शक्तियाँ चहुँ ओर से किसान को नोच-खसोट रही है। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सभी एकजुट हैं और एकजुट होकर शोषण करती हैं। किन्तु भोला-भाला अशिक्षित किसान उनके इस षड़यन्त्र को समझ नहीं पाता। उसमें एकता नहीं है आपसी फूट और बैर उनकी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर देता है। 'गोदान' का होरी अपने भाइयों के अलग्योझे से टूट जाता है तो 'सवा सेर गेहूँ' कहानी का शंकर भी भाई के अलग हो जाने से किसान से बंधुवा मजदूर बन जाता है।'सवा सेर गेहूँ' शोषक शक्तियाँ विविध रूपों में किसानों का शोषण करती हैं। इनमें एक ओर जमींदार और उसके करिन्दे हैं, दूसरी ओर गाँव के महाजन व सूदखोर पंडे-पुरोहित व दौरों पर आने वाले कर्मचारी हैं, जिनका पेट भरते-भरते किसान दम तोड़ देता है। 'गोदान' में रामसवेक मेहतो किसान के इस शोषण के सम्बन्ध में कहता है- "यहाँ तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दे तो गाँव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे तो निबाह न हों। थानेदार और कानिसिटबिल तो जैसे उसके दामाद हैं, जब उनका दौरा गावँ में हो जाये, किसानों का धरम है, वह उनका आदर सत्कार करे, नगर-नियाज दे, नहीं एक रिपोर्ट में गाँव का गाँव बंध जाये।" धर्म भारतीय जन-जीवन का अहम् हिस्सा है। प्रेमचन्द किसान की बदहाली का दूसरा प्रमुख कारण धर्म व धर्म की आड़ में किए जाने वाले शोषण को

मानते हैं, फलतः अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेकत्र धार्मिक पाखण्डों की पोल ही नहीं खोली है, वरन् उनके शोषण का यथार्थ रूप भी सामने रखा है। किसान मूलतः धर्मभीरू और भाग्यवादी होता है, अतः धर्म के ठेकेदारों द्वारा बार-बार ठगा जाता है। 'गोदान' का होरी अपनी मर्यादा बचाने के लिए आजीवन संघर्ष करता है, किन्तु उसकी मर्यादा अन्त में तार-तार हो उसे ग्लानिबोध से पीड़ित करती है। उसके गाँव का पुरोहित दातादीन बहुत धूर्त और चालाक है। किसान को ठगने के सारे हथकण्डों से वह परिचित है। अतः "वह चोरी तो न करते थे, उसमें जान जोखिम था, पर चोरी के माल में हिस्सा बँटाने अवश्य पहुँच जाते थे। कहीं पीठ में धूल न लगने देते थे।" इसी प्रकार लाला पटेश्वरी भी प्रत्येक पूर्णिमा को सत्यनारायण की कथा सुनते दूसरी ओर असामियों को आपस में लड़ा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते। यही धार्मिक अलम्बरदार समाज के नियामक हैं तथा होरी जैसे भोले-भाले किसान इनके षड़यन्त्रों में फँसकर पिसते जाते हैं। गोबर द्वारा विधवा झुनिया से विवाह कर लेने पर ये बिरादरी के दण्ड के रूप में होरी को लूट लेते हैं। होरी यह सब जानता है, किन्तु बिरादरी का भय उस पर इस कदर हावी है "हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उससे बाहर नहीं जा सकते... आज मर जाये तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी।" प्रेमचन्द की रचनाओं में धार्मिक शोषण के ये चित्र यह सोचने को विवश करते हैं कि किसान को उस शोषण से बचाने के लिए शिक्षित वर्ग को भी आगे आना होगा।

अपनी आर्थिक जरूरतों को किसान अपनी उपज से पूरा नहीं कर पाता है। अतः कभी लगान चुकाने, कभी बिरादरी का दण्ड चुकाने और कभी अपनी व्यक्तिगत जरूरतों के लिए शोषकों से कर्ज लेता है। एक बार कर्ज लेकर वह शोषकों के मकड़ जाल में ऐसा फँसता है कि जीवनभर मुक्ति का कोई मार्ग उसे नहीं मिल पाता। प्रेमचन्द साहित्य में ऋणग्रस्त किसान के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त हुई है। वे महसूस करते हैं कि सूदखोरों के चंगुल से किसान को बचाने के लिए सरकार को उन्हें समुचित ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था करनी होगी। "ऐसे साधन भी होने चाहिए, जिनसे किसानों को थोड़े सूद पर रुपये मिल सके। इसके लिए कृषि सहायक बैंकर खोले जाने चाहिए।" इसके अलावा वे लघु व कुटीर उद्योगों की आवश्यकता पर भी बल देते हैं, जिससे किसान अपने खाली समय का सदुपयोग अर्थाजन हेतु कर सकें।

भारतीय किसान अशिक्षित व परम्परावादी सोच में भी जकड़ा हुआ है, जिसके कारण वह शोषक वर्ग की नीतियों को समझ नहीं पाता, बल्कि उसे अपना भाग्य व नियति मानकर सहता रहता। 'गोदान' का होरी भी समझता है कि यह शोषण उसकी नियति है। 'प्रेमाश्रम' के किसान बेगार करने को विवश हैं,

विरोध का कोई भाव भी उनमें नहीं है, "सब के सब सिर झुकाये चुपचाप घास छीलते रहे, यहाँ तक कि तीसरा पहर हो गया। सार मैदान साफ हो गया। सबने खुरपियाँ रख दी और कमर सीधी करने के लिए जरा लेट गये। बेचारे समझते थे कि गला छूट गया लेकिन इतने में तहसीलदार साहब ने आकर हुक्म दिया, गोबर लाकर इसे लीप दो, कोई कंकड, पत्थर न रहने पाये, कहाँ हैं, नाजिर जी, इन सबको डोल रस्सी दिलवा दीजिए।"

शोषक के चक्र से बचने के लिए प्रेमचन्द किसान के संगठन पर सबसे ज्यादा जोर देते हैं। वे मानते हैं कि शिक्षा से ज्यादा संगठन जरूरी है। 1930 में 'स्वराज से किसका अहित होगा' लेख में वे लिखते हैं, "मजदूरों के संगठन हैं, सरकारी नौकरों ने भी अपने-अपने दल संघटित कर लिये, जमींदारों और महाजनों का दल भी व्यवस्थित हैं, मगर किसानों का कोई संघ नहीं। उनकी शक्ति बिखरी हुई है। अगर उन्हें संघटित करने की कोशिश की जाती है तो, सरकार, जमींदार, सरकारी मुलाजिम और महाजन सभी भन्ना उठते हैं।" इसके अतिरिक्त वे बुद्धिजीवी वर्ग से भी अपेक्षा करते हैं कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के बीच जाकर उन की समस्याओं को देखें समझे और उन्हें उनके अधिकारों व महत्त्व से परिचित करायें। वे स्वयं के लिए भी योजना बना चुके थे, शिवरानी से वे कहते हैं, "तब तक धुन्नू जो कुछ होना होगा सो हो जायेगा, उसी को सब काम सौंप करके हम और तुम दोनों देहात में किसानों का काम करेंगे क्योंकि जो हालत आजकल काश्तकारों की है, जब तक कोई उनके बीच में रहकर काम नहीं करेगा तब तक उनको सुधारना बहुत मुश्किल है। जरूरत है कि खुद उनके बीच रहकर उनके काम करें।"

प्रेमचन्द इस बात से भी चिन्तित हैं कि भारतीय किसान के पास पर्याप्त जमीन नहीं है। उनके खेत बहुत छोटे और बिखरे हैं, जिनमें कार्य करने में उसका समय व शक्ति दोनों नष्ट होते ही हैं। वे लिखते हैं, "अधिकतर किसानों के पास दो ढाई बीघे से ज्यादा नहीं होता और उसमें भी पाँच बिस्वे उत्तर, तो पाँच बिस्वे दक्खिन। पाँच बिस्वे को जोतकर उसे हल बैल लिए मील भर चलना पड़ता है। तब कहीं दूसरा खेत मिलता है।" इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने भारतीय भूमि व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन किया। औपनिवेशिक शासन से पूर्व किसान का अपनी कृषि भूमि पर स्वामित्व था तथा वह सालाना कर के रूप में 'राजा का भाग' देता था, जो भूमि के अनुरूप कम या ज्यादा होता था, "अंग्रेजों ने इस पुरानी परम्परा को खत्म करके एक निश्चित नकद रकम के रूप में मालगुजारी लेना शुरू किया। यह रकम जमीन के

हिसाब से तै की जाती थी और साल भर में पैदावार चाहे कम हुई हो या ज्यादा जो रकम पहले तै कर दी गयी थी वही वसूल की जाती थी।"..... इस परिवर्तन के द्वारा व्यवहार में अंग्रेज विजेताओं की हुकूमत का सारी जमीन पर अन्तिम अधिकार कायम हो गया और किसान महज दूसरे की जमीन पर लगान देकर खेती करने वाला न गया। लगान न देने पर उसे जमीन से बेदखल किया जा सकता था। या अंग्रेजी सरकार ने जमीनें में कुछ ऐसे लोगों को दे दी, जिनको उसने जमींदार नामजद करना पसन्द किया।" यहीं जमींदार किसानों के सबसे बड़े शत्रु बने।

प्रेमचन्द साहित्य में चित्रित किसान अशिक्षित है, अंध विश्वासी, घोर भाग्यवादी और रीतियें व परम्पराओं में जकड़ा किसान है, जो परिस्थितियों से समझौता कर लेता है। वह मानता है कि जब "हमारी गरदन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुई है अकड़कर निबाह नहीं हो सकता।" अतः जब नवीन चेतना सम्पन्न गोबर उससे शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने की बात कहता है तो वह गोबर से कहता है, "बेटा जब तक मैं जीता हूँ मुझे अपने रास्ते चलने दो। जब मैं मर जाऊँ तो तुम्हारी जो इच्छा हो करना।" इसके विपरीत वे नवीन चेतना सम्पन्न किसान के चित्र भी उकेरते हैं। उनका यह किसान नये युग की हवा से परिचित है। 'प्रेमाश्रम' के मनोहर व बलराज ऐसे ही किसान हैं। बलराज को अपनी जमीन की चिन्ता नहीं है, न वह अपनी मर्यादा की कीमत पर अपनी जमीन बचाना चाहता है। वह अखबार पढ़ता है और देश विदेश की खबरों से परिचित है, वह गाँव वालों को किसान की शक्ति से परिचित कराते हुए कहता है, "तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़ाते हो, मानो कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है, लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देश में कास्तकारों का राज है, वह जो चाहते हैं, करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है, कास्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है।"

भारतीय किसान पक्का गृहस्थ होता है। उसकी गृहस्थी ही उसकी शक्ति होती है। उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा मरजाद पालने की है। मजदूर या खेत मजूर बनने में वह अपना अपमान समझता है। इस मरजाद को बचाने के लिए वह हाड़तोड़ परिश्रम करता है क्योंकि भारत जैसे "कृषि प्रधान देश में खेती केवल जीविका का साधन नहीं है, सम्मान की वस्तु भी है।" गोदान का होरी अपने तीन बीघे खेतों को बचाने के लिए तमाम ऐसे कार्य करता है, जो उसकी मर्यादा प्रतिकूल हैं। उसका भी विश्वास है, "खेती में

जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है।" रंगभूमि के अंधे सूरदास का भी यही मत है कि "भाई खेती सबसे उत्तम है, बान उससे मध्यम है, बस इतना ही फरक है।" प्रेमचन्द की रचनाओं में किसान का जमीन के प्रति यह लगाव व जुड़ाव सर्वत्र पाया जाता है।

प्रेमचन्द का किसान दीन-हीन है, दरिद्र है, निर्धन है, परन्तु मन से दरिद्र नहीं है, उसमें मानवीयता और आत्मबल कूट-कूट कर भरा है। इसीलिए गोदान का होरी पठान से मालती को बचाने के लिए सारे सपेदपोश धनिकों को पराजित कर देता है। विधवा झुनिया को अपने घर में शरण ही नहीं देता वरन् अपने कायर बेटे को धिक्कारते हुए उसे बहू रूप में स्वीकार करता हुआ अपनी मानवीयता व प्रगतिशीलता का परिचय देता है। वह समस्त अभावों के बाद भी कर्ज लेकर बिरादरी को भोज देता है और झुनिया को सान्त्वना देता हुआ कहता है, "डर मत बेटी डर मत। तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं, आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी भी बेटी है। जब तक हम जीते हैं किसी बात की चिन्ता मत कर। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आँखों से न देख सकेगा। भोज भात जो लगेगा वह हम सब दे लेगें, तू खातिर जमा रख।" होरी की यह उदारता और व्यापक सोच उसे किसानों में भी विशिष्ट बना देती है।

प्रेमचन्द किसानों के आर्थिक जीवन का चित्र ही अंकित नहीं करते वरन् उनके सांस्कृतिक व सामाजिक जीवन के चित्र भी उनके साहित्य में मौजूद हैं। किसानों के पारिवारिक जीवन, पारिवारिक सम्बन्धों, तीज-त्यौहारों, मेले-ठेलों, खेत-खलिहानों, चैपालों आदि का यथार्थ अंकन प्रेमचन्द साहित्य में उपलब्ध है। वस्तुतः "प्रेमचन्द हमें ठेठ किसानों के बीच ले जाते हैं। उनके अलाव उनके खेत और ताल, उनके अखाड़े और लावनी ख्याल, उनके अंधविश्वास और नए जीवन के कसमसाते हुए भावांकुर-प्रेमाश्रम में यह सब कुछ सजीव हैं। उसके पृष्ठों में इतिहास जी रहा है। प्रेमचन्द किसानों की प्राचीन परम्परा दिखाते हैं तो यह भी कि कहाँ उनकी कड़ियाँ टूट रही हैं। प्रेमचन्द की कला इस बात में है कि वे हिन्दुस्तान के बदलते हुए किसान का चित्र खींच सके है।"

21वीं सदी में किसान संघर्ष

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में, किसानों की समस्याओं को और अधिक विस्तार से दर्शाया गया है, जिसमें आत्महत्याओं और कृषि संकट जैसे मुद्दे शामिल हैं। उपन्यास "अकाल में उत्सव" में, पंकज सुबीर ने किसानों की दुर्दशा और खेती छोड़ने की प्रवृत्ति को दर्शाया है, जिससे भविष्य में खाद्य सुरक्षा के बारे

में चिंताएं उठती हैं। आजकल, किसान अपनी मांगों को लेकर संघर्ष कर रहे हैं, और साहित्य में उनकी आवाज को सुना जा रहा है। किसान साहित्य में, किसानों की समस्याओं को न केवल एक आर्थिक समस्या के रूप में बल्कि एक सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे के रूप में भी देखा जाता है।

21वीं सदी में किसान आत्महत्या, कृषि संकट, और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बदलाव जैसे मुद्दे हिंदी साहित्य में प्रमुखता से उभरे हैं।उपन्यास, कहानियां, और कविताएं किसानों की समस्याओं, उनके संघर्षों, और उनके जीवन में आए बदलावों को दर्शाती हैं।कुछ लेखकों ने किसानों के विस्थापन, पलायन, और शहरीकरण के प्रभावों को भी उजागर किया है। 21वीं सदी के साहित्य में किसानों की बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। इस सदी में किसान साहित्य में एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में उभरा है, जो किसानों की समस्याओं, संघर्षों और उनकी बदलती हुई स्थिति को समझने में सहायक है। हिंदी साहित्य में किसान संघर्षों को चित्रित करने के तरीके में भी रचनात्मक विकास हुआ है।लेखकों ने पारंपरिक कथा-शैली के साथ-साथ नए-नए रूपों और शैलियों का प्रयोग किया है।किसानों की आवाज को सशक्त बनाने के लिए विभिन्न साहित्यिक विधाओं का उपयोग किया गया है।साहित्यकारों ने किसानों की समस्याओं को उजागर करने के साथ-साथ उनके संघर्षों और उनकी रचनात्मकता को भी चित्रित किया है।

इस प्रकार प्रेमचन्द की रचनाओं में तद्‌युगीन किसान के जीवन की यथार्थ तस्वीर है। यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता है कि उनका किसान सम्पूर्ण भारतीय किसान का प्रतिनिधि है, हाँ उत्तर भारतीय किसान व उसकी समस्याओं की झाँकी उसमें परिलक्षित होती है। आज के परिवर्तित परिवेश में भी किसान की समस्याएँ कम नहीं हुई है। निर्धनता, बदहाली, अशिक्षा, भाग्यवादिता, रूढ़िवादिता, कर्ज, शोषण व आपसी फूट सब वैसी ही हैं। आज भी वह खेती की वैज्ञानिक तकनीकी से अनजान है। आज भी उसकी आँखे आकाश की ओर बादलों को ताकती हैं, ताकि सूखते खेत हरे हो सके। सरकारी मंचों से प्रत्येक वर्ग के उत्थान की बात बड़े जोर-शोर से की जाती हैं, किन्तु किसान आज भी आत्महत्या करने को विवश है। सवाल उठता है आखिर देश का अन्नदाता कब तक इन तकलीफों से जूझता रहेगा? प्रेमचन्द का साहित्य इस सम्बन्ध में हमें बहुत कुछ सोचने को विवश करता है।

निष्कर्ष:

यह शोध पत्र इस बात पर प्रकाश डालता है कि हिंदी साहित्य में किसान संघर्षों और रचनात्मक विकास का एक समृद्ध इतिहास रहा है। प्रेमचंद से लेकर 21वीं सदी के लेखकों तक, साहित्यकारों ने किसानों के जीवन को अपने लेखन का विषय बनाया है और उनके संघर्षों को उजागर किया है। 21वीं सदी में किसान साहित्य एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में उभरा है, जो किसानों की बदलती हुई स्थिति और उनके सामने आने वाली चुनौतियों को समझने में सहायक है। प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य में किसान संघर्ष को एक नई दिशा दी, और 21वीं सदी में यह विषय और भी व्यापक और गहन हो गया है। साहित्य में किसानों की समस्याओं को उजागर करके, यह उम्मीद की जाती है कि किसानों के जीवन में सुधार के लिए सार्थक प्रयास किए जाएंगे.अतः प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्य में भारतीय किसान की स्थिति का बहुत ही सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। किसान की संघर्षशील स्थिति के पीछे अनेक कारण हैं, जिसमें कहीं न कहीं वह खुद भी जिम्मेवार है, जमींदार और सरकार द्वारा किए गए अधिकांश शोषण को किसान कानूनी मानता है। किसान ने विद्रोह तब किया जब शोषण की सीमा बहुत आगे बढ़ जाती है। किसान के जीवन की दुर्बलता और मन की दृढ़ता दोनों का समावेश कर प्रेमचंद ने किसान के जीवन के यथार्थ का यथा-अर्थ चित्रण किया है। जिसमें वह अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ, टूटता हुआ, समझौता करते हुए भारतीय किसान का व्यक्तित्व प्रेमचंद की रचनाओं में उभर कर आता है। आज का किसान प्रेमचंद साहित्य से अपने अतीत को झाँक कर देख सकता है।

संदर्भ

1. डॉ. रामबक्ष, 'प्रेमचन्द और भारतीय किसान', वाणी प्रकाशन, दिल्ली(1982), पृ.34
2. डॉ. सरोज प्रसाद, 'प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन', रचना प्रकाशन, इलाहाबाद(1972), पृ.232
3. सं. डॉ. इन्द्रनाथ मदान, 'प्रेमचन्दः चिंतन और कला' सरस्वती प्रेस, बनारस(प्रकाशन वर्ष अनोपलब्ध), पृ.53
1. 4. राजेश्वर गुरू, 'प्रेमचन्दः एक अध्ययन', एस. चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली(1965), पृ.221
4. सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 'प्रेमचन्द', कीर्ति प्रकाशन, गोरखपुर(1980), पृ. 165-191
5. देवेन्द्र दीपक (संप.) त्रिभूवननाथ शुक्ल (संप.), साक्षात्कार, (मुंशी प्रेमचंद-पूस की रात), साहित्य अकादमी, भोपाल, (अंक 427, जुलाई 2015), , पृ. 29
6. प्रेमचन्द के विचार (भाग-1) प्रेमचन्द, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, दिल्ली, सं. 2003, पृ. 474
7. प्रेमचन्द और भारतीय किसान - रामबक्ष, पृ. 178

8. गोदान-प्रेमचन्द, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, सं. 2005, पृ. 319
9. प्रेमचन्द के विचार (भाग 1), पृ. 485
10. प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द, न्यू साधना पाकेट बुक्स, दिल्ली, सं. 2008, पृ. 167
11. प्रेमचन्द घर में - शिवरानी देवी प्रेमचन्द, आत्माराम एण्ड सन्स, सं. 2006, पृ. 197
12. प्रेमचन्द के विचार - प्रेमचन्द, (भाग 1), पृ. 473
13. भारत: वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, अनु-ओमप्रकाश संगल पीपूल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा. लि. दिल्ली, सं. 1976, पृ. 86
14. गोदान - प्रेमचन्द, पृ. 18
15. प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द, पृ. 46
16. कर्मभूमि - प्रेमचन्द, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, सं. 2005, पृ. 184
17. रंगभूमि - प्रेमचन्द, प्रकाशन सं., दिल्ली, सं. 2004, पृ. 19
18. प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1952, तीसरी आवृत्ति, 2002, पृ. 54